जनवरी

मूल्य ६ आना

# भूमिका

एक जीवित साहित्य निरन्तर प्रगति करता रहता है। ज्यों-ज्यों यह अपनी कलकलमयी जल-धारा के साथ आगे बढ़ता है, त्यों-त्यों इसमें नित्य नये सोते फूटते रहते हैं और इस प्रकार यह आबद्धता के अभिशाप से बचता रहता है। हिन्दी का आधुनिक साहित्य बहुत पुराना नहीं है, फिर भी उसमें नई धाराओं की उत्पत्ति होती रही है। इनमें से कौन-सी धाराएं स्थायी होंगी और कौन-सी केवल थोड़े समय का दर्पण भर बन कर अनन्त काल की उत्ताल तरंगों में लुप्त हो जायेंगी, इसका मूल्यांकन अभी संभव नहीं है। सच तो यह है कि नया साहित्य या नई कविता का कहां से आरंभ होता है इस संबंध में भी अभी बड़े मतभेद उठ खड़े हुए हैं। कुछ लोगों का तो यह दावा है कि वे ही नये हैं। यह सब एक समृद्ध साहित्य के लिए उचित ही है, फिर भी साहित्य के क्षेत्र में जो कुछ हो रहा है, यह सब ठीक ही है, यह मान कर कोई भी बुद्धिमान आलोचक हाथ पर हाथ धर कर बैठ नहीं सकता। आलोचक भी अपनी बुद्धि के अनुसार साहित्य को कुछ न कुछ दिशा देने की चेष्टा करेंगे।

इस पुस्तिका में हिन्दी के चार मूर्द्धन्य आलोचकों ने अलग-अलग विषयों पर अपना मत व्यक्त किया है। सच तो यह है कि ये उनके रेडियो-भाषण हैं। कहीं ऐसा न हो कि रेडियो-भाषण की सीमाओं के कारण उनका वक्तव्य सही रूप में न आ पाया हो, इसलिए इन भाषणों को छापने के पहले विद्वान लेखकों को इस बात का अवसर दिया गया कि वे अपने-अपने भाषण में जैसा चाहें परिवर्धन, परिवर्जन या संशोधन कर लें, इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्तमान रूप में ये लेख इन विद्वानों के सुलझे हुए विचार पेश करते हैं।

फिर भी यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक पाठक इन विद्वानों की हर बात से सहमत हो। इसी भावना से ये भाषण प्रकाशित किये जा रहे हैं। इतने थोड़े पृष्ठों में बहुत कुछ बातें जो आनी चाहिएं थीं, रह गई होंगी, पर प्रकाशन की सीमाओं को देखते हुए ऐसा अनिवार्य था।

मन्मथनाथ गुप्त
संपादक

# विषय सूची

: १ :

# हिन्दी साहित्य में कहानियाँ

विष्णु प्रभाकर

कहानी आज के हिन्दी साहित्य का सबसे पुष्ट अंग है। हिन्दी कहानी में भारत की नव चेतना जिस अनुपात से प्रतिबिम्बित हुई है, उस अनुपात से वह, कविता को छोड़कर और किसी क्षेत्र में नहीं हुई। परिमाण की दृष्टि से भी कहानी की यही स्थिति है। यह एक साथ उसका गुण और दोष है। गुण इसलिये कि उसमें जनमन को प्रभावित करने की शक्ति अधिक है। दोष इसलिए कि कहानी के नाम पर प्रकाशित होने वाला आज का काफी साहित्य सस्ता है।

हिन्दी में आधुनिक कहानी का जन्म पचास वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। मई १९०७ की 'सरस्वती' में 'बंग महिला' की एक कहानी प्रकाशित हुई थी। उसका नाम था 'दुलाईवाली।' वह हिंदी की सबसे पहली कहानी थी, जो आधुनिक कहानी के सबसे अधिक पास थी, परन्तु इसके चार साल बाद तक इस परम्परा को आगे बढ़ाने वाली कोई दूसरी कहानी प्रकाशित नहीं हुई। सन् १९१२ में श्री जयशंकर प्रसाद की प्रेरणा से 'इन्दु' का प्रकाशन शुरू हुआ, और इसी वर्ष उसमें उनकी कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। इसमें जमींदार के अत्याचार का वर्णन था। इसके बाद आधुनिक कहानी की धारा बह निकली, परन्तु इस धारा को वास्तविक मार्ग दिखाने वाले थे मुंशी प्रेमचन्द, जिन्होंने पुरातन और नवीन कहानी के अन्तर को स्पष्ट किया। वह पहले महायुद्ध के बीच सन् १९१६ में उर्दू से हिन्दी में आये, और सबसे पहले उन्होंने कहानी में मनोविज्ञान का प्रयोग किया। उन्होंने अपनी कहानी 'आत्माराम' में तोते के प्रति महादेव के तीव्र स्नेह और धन पाकर उसकी मानसिक भावनाओं के परिवर्तन का जो चित्र खींचा है, वह उसे पुरानी कहानी से अलग करता है। मन की अवस्था का कितना स्वाभाविक चित्रण है—"अकस्मात उसे ध्यान आया कहीं चोर आ जाएं तो मैं भागूंगा क्योंकर? उसने परीक्षा करने के लिए कलसा उठाया और दो सौ पग तक बेतहाशा भागा हुआ चला गया। जान पड़ता था उसके पैरों में पर लग गए।"

लेकिन आधुनिक कहानी केवल मनोविज्ञान के कारण ही प्राचीन से अलग नहीं

है। उसके और भी कारण हैं। प्राचीन कहानी में अलौकिक और आकस्मिक घटनाओं की प्रधानता रहती थी। घटना-चमत्कार, उपदेश, अभौतिक और अतिभौतिक सत्ता का उपयोग तथा निर्णयात्मक प्रवृत्ति आदि कुछ तत्व उसके लिए अनिवार्य थे। मनोरंजन उसका एकमात्र लक्ष्य था। परन्तु आधुनिक कहानी में अलौकिक और अभौतिक से हटकर भौतिक सत्ता, राजा रानी और अभिजात वर्ग से हटकर जन-साधारण, तथा संयोग के स्थान पर मनोविज्ञान का प्रयोग शुरू हुआ। मनुष्य की बाह्य प्रवृत्ति के स्थान पर अन्तः प्रवृत्ति का चित्रण होने लगा। टैकनिक की दृष्टि से भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। पुरानी कहानी का आरंभ होता था 'एक था राजा' से और अन्त 'जैसे उनके दिन बीते वैसे सबके बीते' ऐसे किसी भरत-वाक्य से। आज का लेखक कथावस्तु के बीच में से ही कहानी शुरू कर देता है, और उसके अन्त से भरत वाक्य उतना ही दूर जा पड़ा है जितना दिन के मध्यान्ह से रात का मध्यान्ह। इन सब परिवर्तनों को देखकर कहा जा सकता है कि आधुनिक कहानी में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के साथ-साथ, जीवन के यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति बढ़ी है। कहानी का सत्य जीवन के सत्य के समीप आने लगा है।

इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह था कि उस काल तक भारत में 'अंग्रेजी राज की सत्ता स्थापित हो चुकी थी। अंग्रेज भारत में अपना शासन विधान ही लेकर नहीं आए थे, वे उसके साथ अपनी सभ्यता, संस्कृति और सबसे बढ़कर वैज्ञानिक आविष्कारों का चमत्कार भी लाये। उन्होंने यहां स्कूल और कालेज खोले तथा अस्पताल और न्यायालय आदि की स्थापना की। प्रेस, तार, डाक और रेल आदि के प्रचलन के बाद भारतीय मानस में एक अद्भुत क्रांति मच उठी। इस काल के अधिकांश सुधार-आन्दोलन किसी न किसी रूप में पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित हैं।

वस्तुतः पाश्चात्य शिक्षा आलोचनात्मक और वैज्ञानिक है। उसने तथा तत्कालीन समाज-सुधार-आन्दोलनों ने भारतीय मानस में शंका के अंकुर उत्पन्न कर दिये। वह रूढ़िवादी परम्परा का विरोध करने लगा। परन्तु विद्रोह की यह भावना सामाजिक कुरीतियों तक सीमित नहीं रही, उसने तत्कालीन जमींदार के अत्याचार के विरुद्ध भी युद्ध-घोषणा की। ऐसी स्थिति में पारस्परिक एकता और भूमि के प्रति ममता का उदय होना स्वाभाविक होता है। ऐसी ही परिस्थिति में मानवता जागती है और वर्ग भेद प्रबल होता है।"

तो यह अवस्था थी, जब हिन्दी कहानी के पर निकले और उसने उड़ना शुरू किया। ठीक इसी समय महात्मा गांधी, जिन्होंने दक्षिण अफ्रीका में मानव अधि-

कारों के लिए सफल युद्ध लड़ा था, भारतीय स्वतन्त्रता के लिए ब्रिटिश सत्ता से निशस्त्र जूझने की तैयारी कर रहे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि जो विद्रोह पुरोहित और जमींदार के विरुद्ध जाग उठा था, उसने अब अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध युद्धघोषणा की। यद्यपि आतंकवाद के प्रयोग भी चल रहे थे परंतु गांधीजी की अहिंसा-नीति के कारण विद्रोह में कटुता नहीं आई। सन् १९२७-२८ तक के साहित्य में सामाजिक चेतना के साथ-साथ इसी राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव दिखाई देता है। 'समर यात्रा' के लेखक मुंशी प्रेमचन्द, 'उसकी माँ' के लेखक पांडेयबेचन शर्मा 'उग्र' तथा सुदर्शन आदि इसी धारा के लेखक हैं। इसी काल में या इससे कुछ आगे चल कर 'भिन्न-भिन्न वर्गों में धर्म, व्यापार, सरकारी काम और नई सभ्यता की ओट में होने वाले पाखंड का भंडाफोड़ करने वाली सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था से पीड़ित जन-समुदाय की दुर्दशा का चित्रण करने वाली तथा अतीत के स्वर्णयुग का स्मरण कराने वाली अनेक कहानियाँ लिखी गईं। प्रेमचन्द्र, प्रसाद, कौशिक, सुदर्शन चतुरसेन शास्त्री, उग्र, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, रायकृष्णदास तथा जैनेंद्र कुमार उस काल के कुछ श्रेष्ठ कहानीकार हैं। सामान्य प्रेम कहानियाँ तथा हास्य रस की कहानियाँ भी लिखी जाती रही पर वे प्रभावशाली नहीं थी।

इस काल में आदर्शवाद और यथार्थवाद, सामाजिक और राजनीतिक चेतना अद्भुत रूप से समन्वय की ओर बढ़ते दिखाई देते हैं। सन् १९३२-३३ तक मनोविज्ञान का क्षेत्र बढ़ जाने के कारण इस धारा का कलापक्ष भी पुष्ट हुआ। मुन्शी प्रेमचन्द मनोविज्ञान के क्षेत्र में मानव चरित्र के साधारण पहलू से आगे नहीं बढ़े, परन्तु जैनेंद्र कुमार, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, इलाचन्द्र जोशी, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार और अज्ञेय आदि ने साधारण से आगे बढ़कर असाधारण परिस्थितियों में चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण शुरू किया। राष्ट्रीय चेतना शीघ्र ही मानवता के उद्बोधन में लय हो गई। शाश्वत सत्यों की खोज की जाने लगी। सुदर्शन और जैनेंद्र आदि इसी खोज में अग्रसर दिखाई देते हैं। कला का सहारा पाकर पुराना आदर्शवाद फिर पनप उठा। अन्तर इतना था कि यद्यपि इस आदर्शवाद का सिर तो आकाश में जा लगा था परन्तु पैर धरती से अलग नहीं हुए थे।

इसी काल के आस पास जिसे साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के ह्रास के आरंभ का काल कहा जा सकता है, लगभग १९३५-३६ में एक और प्रवृत्ति हमारे साहित्य में उत्पन्न हुई। गांधी जी ने भारतीय मानस को इतनी तेजी से झकझोरा था, उसमें इतना साहस उत्पन्न कर दिया था कि वह बहुमुखी स्वतन्त्रता के लिए आकुल हो उठा। इतना आकुल कि उसे गांधीजी का मार्ग भी प्रभावहीन जान पड़ा। उसने

अर्थशास्त्र पर आधारित समाजवाद के एक नये मार्ग की खोज की । उस मार्ग के प्रणेता थे मार्क्स । हमारे साहित्य में इसका उदय प्रगतिवाद के रूप में हुआ । चूंकि इस धारा में विद्रोह का स्वर बहुत तीव्र था और गांधी जी की अहिंसा की भाँति उस पर कोई अंकुश नहीं था, इसलिये कहानी-साहित्य में शुरू-शुरू में काफी उच्छृंखलता दिखाई दी । मार्क्सवाद का नारा लगा कर सर्वहारावर्ग से मौलिक सहानुभूति प्रगट करने वाली सस्ती कहानियाँ लिखी जाने लगीं । और जब फ्रायड के चेतन-उपचेतन के मनोविज्ञान के कारण सैक्स के क्षेत्र में विद्रोह शुरू हुआ, तो नारी और कामुकता के नग्न चित्रण पर भी प्रगतिवादी विद्रोह की मोहर लग गई । इसी काल में मनोविज्ञान भी दूषित रूप में प्रगट हुआ । वह अस्वस्थ मन और मस्तिष्क की परीक्षा करके ही मौन नहीं हुआ, उसका इलाज करने का दावा भी करने लगा । परिणाम यह हुआ कि नायिका भेद की भाँति हमारा कहानी साहित्य भी मनोविज्ञान का लक्षण-ग्रंथ बन चला और उसमें अस्वस्थ मन और मस्तिष्क वाले पात्रों का बाहुल्य हो गया । इस विकृत मनोविज्ञान और रंगीन रोमानी का प्रारंभ प्रेमचन्द के बाद ही हो गया था । इलाचन्द्र जोशी का अनुसरण करते हुए पहाड़ी और नरोत्तम नागर ने भी प्रारंभ में इसी प्रवृत्ति को अपनाया ।

ये दूषित प्रवृत्तियां दूसरे महायुद्ध के बीच तक चलती रहीं, परन्तु विश्व तथा देश में होने वाली अनेक सामाजिक और राजनीतिक क्रांतियों ने शीघ्र ही इन पर अंकुश लगा दिया । प्रगतिवाद की व्याख्या फिर से की गई, यह स्पष्ट किया गया कि प्रगतिवाद तत्कालीन संकटों के कारणों का विवेचन करके ही नहीं रह जाता, 'क्या होना चाहिए' इसका निर्देश भी करता है । उसने यौन आचार के संबंध में भी अपनी स्थिति स्पष्ट की । लेनिन के शब्दों में इन सस्ते रोमांटिक प्रगतिवादियों को बताया गया—'यौन जीवन में केवल एक ही बात नहीं देखनी है कि आपकी तबीयत क्या कहती है । इसमें यह भी देखना है कि सांस्कृतिक विशेषताएं और आवश्यकताएं क्या हैं ।' इन अंकुशों का परिणाम यह हुआ कि हमारे साहित्य में सस्ते यौन-नारी तथा नकली रोमानी मजदूरी वाले साहित्य की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई । उसके स्थान पर स्वस्थ और वैज्ञानिक अध्ययन वाला वास्तविक प्रगतिवादी साहित्य पनपने लगा । यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, नागार्जुन, हंसराज रहबर, रांगेयराघव, रामवृक्ष बेनीपुरी, अमृतराय तथा श्रीमती चन्द्र किरण सौनरेक्सा इस धारा के कुछ प्रतिनिधि लेखक हैं । यद्यपि मध्यवर्ग के रोमानी जीवन का चित्रणकारी कुछ लेखकों ने (इलाचन्द्र जोशी, पहाड़ी, नरोत्तम नागर आदि) अपना मार्ग बदला, फिर भी यथार्थ और मनोविज्ञान के नाम पर नग्न चित्रण का रोग अभी तक भी पनप रहा है ।

इस काल में एक ओर तो विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने की भावना है, दूसरी ओर आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में संतुलन पैदा करने की प्रवृत्ति है। इसी के साथ-साथ एक दूसरी प्रवृत्ति भी इस काल में दिखाई दी । वह थी शाश्वत सत्यों के साथ तत्कालीन समस्याओं की चर्चा। इन मानवतावादी लेखकों ने मार्क्स-वाद पर आधारित प्रगतिवाद को संपूर्ण रूप से तो स्वीकार नहीं किया परन्तु यथार्थ-वाद से भी मुँह नहीं मोड़ा। उन्होंने यथार्थ के सत्य को स्वीकार करके मनोविज्ञान के सहारे मानवता की प्राणप्रतिष्ठा की। राधाकृष्ण अश्क, विष्णु इस प्रवृत्ति के कुछ लेखक हैं। विशुद्ध गांधीवादी लेखकों से प्रभावित लेखकों में सियारामशरण गुप्त प्रमुख हैं ।

जहाँ तक कलापक्ष का संवंध है। हिन्दी कहानी इधर वहुत समृद्ध हुई है। कल्पना मँजी और कम से कम पात्रों द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से कथानक, चरित्र वातावरण और प्रभाव की सृष्टि की जाने लगी। तत्कालीन सत्य अर्थात् यथार्थ का चित्रण करने के लिए प्रभाववादी कहानियों का जन्म हुआ। इस श्रेणी की कहानियों में अज्ञेय की कहानी 'रोज' वहुत प्रभावशाली कहानी है। उसमें एक गृहस्थी में होने वाली एक दिन की साधारण घटनाओं का चित्रण है, पर वह चित्रण जीवन के समस्त वोझ को उठा कर पाठक की छाती पर रख देता है। भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'प्रायश्चित्त' प्रभाववादी कहानियों में व्यंगप्रधान कहानी का एक सुन्दर उदाहरण है। इसके अतिरिक्त कमला कान्त वर्मा ने 'खंडहर' और 'पगडंडी' जैसी कवित्वपूर्ण कल्पना वाली कहानियाँ भी लिखीं जिनके पात्र महल, प्रकाश, और सड़क आदि हैं। वे अपनी कहानी कहते हुए अतीत का अतिरोचक और प्रभावशाली चित्र उपस्थित करते हैं। प्रसाद के वाद रायकृष्णदास ने 'कला और कृत्रिमता' जैसी कुछ प्रतीकात्मक कहानियाँ भी लिखीं। रामचन्द्र तिवारी ने भी इस ओर कुछ ध्यान दिया पर ये प्रयत्न आगे नहीं वढ़े क्योंकि युद्धकालीन भयंकर घटनाओं ने देश की आत्मा पर गहरी चोट की । साम्प्रदायिक रक्तपात, १९४२ का विद्रोह, आजाद हिन्द फौज तथा वंगाल का अकाल ये थी कुछ घटनाएं जिन्होंने तत्कालीन भारतीय मानस को झंझोड़ डाला। इन घटनाओं ने कहानी साहित्य को प्रभावित तो किया परन्तु कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ा । उसके कारण थे। एक तो ये घटनाएं एक के वाद एक सिनेमा के चित्रों की भाँति वदलती चली गई। दूसरे विभाजन के वाद जिन परिस्थितियों में देश स्वतन्त्र हुआ उसके कारण उसकी अनेक पुरानी मान्यताएं ढह गई। इसलिए आज के लेखक को कुछ सूझ नहीं पड़ता, और न अभी तक वह इन घटनाओं का सही-सही

मूल्यांकन ही कर पाया । फिर भी बंगाल के अकाल, हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य और शरणार्थी समस्या को लेकर थोड़ी ही सही, पर बड़ी सुन्दर और प्रभावशाली कहानियों की रचना हुई । सियारामशरण गुप्त, अज्ञेय, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, हंसराज रहबर, विष्णु, मन्मथनाथ गुप्त, शमशेर सिंह, तेज बहादुर, रामचन्द्र तिवारी, सेंगर, रांगेयराघव और अश्क आदि अनेक नये पुराने लेखक इन दिनों सजग रहे । 'शरणार्थी', 'दिल में जगह चाहिए' और 'अगम अथाह' इस काल की कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ हैं । 'अगम अथाह' में विभाजन के बाद के नर संहार में मारे जाने वाले इकलौते बेटे के माता पिता के मानसिक द्वंद्व का बड़ा मार्मिक चित्रण है । आज का कहानीकार यद्यपि अधिकतर मध्यवर्ग की परिधि में ही चक्कर काट रहा है परन्तु कुछ लेखक निश्चित रूप से उस दायरे को तोड़ देने को उत्सुक हैं । नये लेखक विशेष रूप से इस ओर सजग हैं । यहाँ पर एक नई प्रवृत्ति का जिक्र करना असंगत न होगा । इधर कहानियों में आलोचना की प्रवृत्ति बढ़ी है । राधाकृष्ण, द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' जैसे कहानी में कहानी को प्रधान मानने वाले हैं अवश्य, पर इधर के लोकप्रिय कथाकारों में वे ही नाम ऊपर हैं जिन्होंने एक आलोचक के शब्दों में 'सटीक कहानी लिखने की शैली को' अपनाया ।

युद्धोत्तर काल में, जो शिथिलता हमारे साहित्य में दिखाई दी उसके कारण चाहे कितने तात्कालिक हो उनकी जड़ गहरी है । प्रायः नये लेखक समाज का तो क्या अपने परवर्ती लेखकों तक की कला का भी अध्ययन नहीं करते । दूसरी बात यह है कि आज का लेखक युग की भयंकर समस्याओं से त्रस्त हो उठा है और उनसे मुँह मोड़ कर अतीत या फिर रोमांस के पीछे छिप जाना चाहता है । जीवन से हटकर स्वप्नलोक में भ्रमण करना ही पलायनवाद है । इस दूषित प्रकृति का अन्त तभी हो सकता है जब जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं का संबंध आधुनिक जीवन की मूल समस्याओं से स्थापित कर लिया जाये । हर्ष की बात है, ऐसा होने लगा है और भविष्य के प्रति आस्था पनप चली है । कुछ नई प्रतिभाएं भी उदय होती दिखाई दे रही हैं । केशवगोपाल निगम, सत्येंद्रराज, कमल जोशी, रामकुमार मार्कण्डेय आदि के नाम निस्संकोच लिये जा सकते हैं ।

इस बड़े अभाव के अतिरिक्त कुछ और अभाव भी इधर की हिन्दी कहानी में स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं । पिछले खेवे के प्रेमचन्द, प्रसाद, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा और चतुरसेन शास्त्री ऐसे लेखकों ने कितनी ही सुन्दर ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी थीं पर आज तत्कालीन समयाओं की प्रचुरता ने इस धारा के प्रवाह को मन्द कर दिया है । यह स्वाभाविक ही था, परन्तु नये मूल्यांकनों के प्रकाश में ऐसी

कहानियाँ लिखी जानी चाहिएँ और वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल तथा भगवतशरण उपाध्याय की परम्परा को कलापक्ष के सहयोग से आगे बढाना चाहिए। हास्य रस की कहानियाँ भी हिन्दी साहित्य में नही के बराबर हैं। सस्ती कहानियो को छोड़ दें तो राधाकृष्ण, अश्क और अमृतलाल नागर के अतिरिक्त और किसी लेखक का नाम नही सूझता । हास्य रस वस्तुतः निश्चल हृदय से फूटता है। इसीलिये राजनीति से प्रभावित आज के हिन्दी साहित्य में व्यंग की प्रधानता है। यही बात प्रतीकात्मक कहानियों पर लागू होती है। विशुद्ध मनोरंजन के लिए स्वस्थ जासूसी कहानियों का अभाव भी अस्वस्थता का लक्षण है। गोपालराम गहमरी की परम्परा को मंजे हुए हाथों की जरूरत है। वैज्ञानिक कथावस्तु, प्राकृतिक चित्रण, आदिवासियों के जीवन और विदेशियों से संबध रखने वाली कहानियाँ भी नगण्य है।

हाँ, शैली और कला की दृष्टि मे युद्धोत्तरकालीन कहानी बहुत पुष्ट हुई है। भावनाओं की सूक्ष्म व्यंजना और प्रभाव की व्यापकता की ओर भी अधिक ध्यान जाने लगा है। चित्रकला मे 'पेंसिल स्केच' और यातायात के साधनो में 'हवाई जहाज' से उसकी तुलना की जा सकती है। प्रवृत्ति कम से कम शब्दों में पूरा चित्र देने की है। अब तो कथानक न भी रहे तो कहानी बन जाती है। इसलिये कहानी और रेखाचित्र में अब कोई अन्तर नही माना जाता । महादेवी के काव्यमय रेखाचित्र कहानी की परिधि में आ चुके है। चरित्र और वातावरण प्रधान कहानी से आज प्रभाववादी कहानी अधिक लोकप्रिय है।

भाषा में रुझान सरलता, स्वाभाविकता और गतिशीलता की ओर है। पांडित्य का प्रदर्शन अतीत की बात है। मुहावरो और लोकोक्तियो का प्रयोग भी कम होता है, परन्तु आज के कहानीकार अभी तक विराम चिन्हो की शक्ति को नही समझ पाया है। अर्थ और भाव की रक्षा तथा लालित्य की उत्पत्ति के लिए उनका सही प्रयोग अनिवार्य है।

लेकिन इन अभावों के बावजूद हिन्दी कहानी ने बहुत प्रगति कर ली है। आज वह केवल विनोद का साधन नही रह गई है। वह आदर्शवाद, यथार्थवाद के पथ से आगे बढती हुई और युग-सत्य को अंगीकार करती हुई जन-जीवन का दर्पन बन गई है। युग की आत्मा का जितना सही चित्रण आज की कहानी मे हुआ है उतना साहित्य के किसी और अग में नहीं, इतिहास में भी नहीं। कला की दृष्टि से उत्तम अनुभूति, अभिव्यक्ति और सहानुभूति ये तीनों तत्व वर्तमान है। उसके उज्ज्वल भविष्य के बारे मे कोई शंका नही है।

: २ :

# आधुनिक हिन्दी कविता

## डा० नगेन्द्र

उस दिन कुछ साहित्यिक मित्रों के साथ कविता की वर्तमान स्थिति पर चर्चा हो रही थी। एक सज्जन ने कहा—यूरोप में इन दिनों कविता की बड़ी दुर्दशा है—फ्रांस में तो कवियों को प्रकाशक नहीं मिलते। सुना है वहां कवि अपने हाथ से कविता की प्रतिलिपियाँ तैयार कर के स्वयं ही उन्हें बाजार में बेचते हैं। यूरोप के किसी देश का एक कवि तो 'बुल फाइटर' हो गया है। कविता लिखने की अपेक्षा उसे नान्दियों से लड़ना अधिक लाभकारी सिद्ध हुआ। यह सुनकर हमारे एक युवा कवि ने अपने बलिष्ठ शरीर और दीर्घ आकार पर दृष्टि डाली और आश्वस्त होते हुए कहा : तो कविता का भविष्य बुरा नहीं है।

हिन्दी में स्थिति इतनी गंभीर तो नहीं है, परन्तु गतिरोध के चिन्ह यहाँ भी स्पष्ट ही लक्षित होते हैं। इसके अनेक कारण ढूंढे जा सकते हैं, परन्तु उन में सबसे प्रमुख है आज के जीवन में मूल्यों की अराजकता। आज हमारे पैरों के नीचे की जमीन स्थिर नहीं है; परम्परागत मूल्य खोखले हो गये हैं, और नये मूल्य अभी निःसत्व हैं। आज हमारे जीवन में अनेक उलझी हुई अन्तःप्रवृत्तियाँ हैं, और साधारणतः उनका स्वच्छ विश्लेषण संभव नहीं है, परन्तु फिर भी एक तथ्य अत्यन्त स्पष्ट रूप से आज की दुनिया के सामने उपस्थित हो गया है। और वह है दो परस्पर-विरोधी विचारधाराओं का संघर्ष। इन्हें स्थूल रूप से दक्षिणपक्षीय और वामपक्षीय विचारधारा कहा जा सकता है।

साधारणतः इन शब्दों में साहित्यिक गरिमा का अभाव है। ये उथली राजनीति के हल्के शब्द हैं, परन्तु इनकी शिथिलता ही आज की वास्तविकता के अधिक निकट है, जो इस युग के मानव मस्तिष्क की दुविधा को व्यक्त करने के लिए अधिक उपयुक्त है। आदर्शवाद, गांधीवाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, साम्यवाद आदि अन्य बंधे-बंधाये शब्दों की पारिभाषिकता उन्हें नहीं समा सकती। दर्शन के क्षेत्र में विचारधाराएं हैं आदर्शवाद तथा भौतिकवाद और राजनीतिक क्षेत्र में लोकतन्त्रवाद और साम्यवाद। संक्षेप में, दक्षिणपक्षीय और वामपक्षीय

विचारधाराओं का अन्तर इस प्रकार है : पहला परम्परागत विकास का मार्ग है, दूसरा विद्रोह का । पहले का आधार अध्यात्मोन्मुख आदर्शवाद है, दूसरे का साम्योन्मुख भौतिकवाद । परिणामतः एक की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है और दूसरे की वहिर्मुखी । एक में आन्तरिक मूल्यों का महत्व है, दूसरे में भौतिक मूल्यों का । पहले में परम्परा की किसी न किसी रूप में स्वीकृति है, दूसरे में उसका प्रायः निषेध है । इसके अतिरिक्त दोनों में एक और अन्तर होना चाहिए—पहले में व्यक्ति की महत्ता और दूसरे में समाज की । परन्तु यह अन्तर अनिवार्यतः नहीं मिलता । यह अन्तर आदर्शवाद और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में जितना तीव्र तथा मौलिक है, उतना दक्षिण और वामपक्षीय विचारधाराओं में नहीं है । दक्षिणपक्ष के अनेक रूपों में समाज का बड़ा ही माहात्म्य है, उधर वामपक्ष के अन्तर्गत कई रूपों में व्यक्ति की प्रबल स्वीकृति है ।

भारत में उपर्युक्त विचारधाराओं का द्वंद इतना तीव्र नहीं है, पर स्पष्ट अवश्य है । आज हमारे जीवन दर्शन का झुकाव जाने-अनजाने इन दो में से एक की ओर अवश्य है । दक्षिणपक्षीय विचारधारा का प्रतीक हमारे यहाँ गांधीवाद है, और वामपक्षीय विचारधारा के नीचे मूलतः मार्क्स के भौतिक दर्शन का आधार है । दक्षिणपक्षीय आदर्शवादी विचारधारा की प्रेरणा आधुनिक हिन्दी कविता की दो प्रमुख प्रवृत्तियों में स्पष्ट है : एक के अन्तर्गत जीवन और जगत के सूक्ष्म अतीन्द्रिय सौंदर्य से अनुप्राणित वे कविताएं आती हैं जिन्हें छायावाद का नाम दिया गया है । दूसरे के अन्तर्गत देशभक्ति की भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाली ऐसी रचनाएं आती हैं जिन्हें समष्टिरूप में साधारणतः राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता का नाम दिया जा सकता है । यह ठीक है कि छायावाद का जन्म दक्षिण और वामपक्ष के इस संघर्ष से, यहाँ तक कि गांधीवाद के जन्म से भी बहुत पहले हो चुका था, परन्तु फिर भी इसमें संदेह नहीं कि उसका मूल आधार आदर्शवादी चिन्ताधारा ही है, जो गांधीवाद अथवा समस्त दक्षिणपक्षीय विचारधारा का भी मूल आधार है । वास्तव में जिन प्रभावों में हमारे सामाजिक–राजनीतिक क्षेत्र में गांधीवाद का विकास हुआ, उन्हीं में काव्य के क्षेत्र में छायावाद का जन्म हुआ और बाद में तो,गांधीवाद ने छायावादी रचनाओं को सीधी प्रेरणा दी ही । दोनों में जो एक स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है वह मूल चिन्ता का अन्तर नहीं है : अभिव्यक्ति के माध्यम का—कर्म और भावना-चिन्तन का अन्तर है । जैसा कि मैं आगे स्पष्ट करूंगा छायावाद और गांधीवाद का मूल दर्शन एक ही है, सर्वात्मवाद : छायावाद ने इनके दो मूल तत्वों को सौंदर्य और प्रेम के रूप में ग्रहण किया है, गांधीवाद ने

सत्य और अहिंसा के रूप में। भावना के क्षेत्र में जो सौंदर्य है, वही चिन्तन और विचार के क्षेत्र में सत्य है। पहले में जो प्रेम है, वही दूसरे में अहिंसा है। वैसे दोनों की मान्यताएं भी बहुत कुछ समान हैं। उदाहरण के लिए सूक्ष्म आंतरिक मूल्यों का महत्व, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, व्यक्तित्व की प्रधानता आदि। अतएव छायावाद की कविताएं निस्संदेह आदर्शवादी चिन्ताधारा के अन्तर्गत ही आती है, और उन का गांधीवाद से निकट संबंध है।

यों तो हिन्दी के आलोचक छायावाद की कई बरसियाँ मना चुके हैं, परन्तु उसने भावल सन्यासी की भाँति अपने अस्तित्व को अनेक वार अभिव्यक्त करके उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया है। वास्तव में यह तो ठीक है कि १९२५-३५ तक के दशाब्द की भाँति आज वह हिन्दी की वर्तमान कविता की मूल अथवा प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। परन्तु यह जीवन्मृत भी नहीं है। जब तक सुश्री महादेवी वर्मा की वीणा मौन नहीं होती, तब तक छायावाद का अस्तित्व निःशेष नहीं हो सकता। छायावाद एक तरह से महादेवी वर्मा की कविता में स्वर-बद्ध हो गया है। छायावाद के सभी मूल तत्व उनकी कविता में एकत्र मिलते हैं, और आलोचकों की भावी पीढ़ियाँ उनके काव्य को आधार मान कर छायावाद का तत्वविश्लेषण किया करेंगी। वैयक्तिक जीवन दृष्टि, सूक्ष्म सौंदर्य-बोध, अतीन्द्रिय शृंगार, प्रकृति की चेतन अनुभूति, सर्वात्मवाद के व्यक्त-अव्यक्त रहस्य-स्पर्श, बौद्धिक रहस्यवाद, रूप और रंग का राशि-राशि वैभव आदि छायावादी काव्य-तत्वों को यदि एकत्र देखना हो तो महादेवी की कविता का ही अध्ययन करना होगा। महादेवी के अतिरिक्त इधर पन्त की अधिकांश नवीन कविताएं भी उनके पूर्व-युगवाणी कवि-रूप की ही प्रौढ़तर अभिव्यक्तियाँ हैं। महादेवी और पन्त के अतिरिक्त स्वर्गीय प्रसाद जी तथा कवि निराला का अधिकांश काव्य भी इसी वर्ग की विभूति है। परन्तु उनके वलिष्ठ व्यक्तित्वों को छायावाद के रेशमी तारों में समग्र रूप से नहीं बांधा जा सकता।

इस वर्ग की दूसरी कविताओं—राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविताओं—का तो आदर्शवादी चिन्ताधारा से सीधा संबंध है ही। इनका तो गांधी दर्शन एक प्रकार से मूल आधार ही है। इन कविताओं के पीछे सत्य और अहिंसा के आदर्श की प्रेरणा है। इनकी देशभक्ति जीवन के संस्कारी मूल्यों से अनुप्राणित है। वह यहाँ धर्म रूप में स्वीकृत की गयी है। इनमें सर्वत्र ही परम्परा की श्रद्धापूर्ण स्वीकृति है। इन का लक्ष्य भौतिक सुख-समृद्धि न होकर भारत की जनता तथा उसके साथ समस्त मानवता का निःश्रेयस अभ्युदय है। और इनका साधन ध्वंस न होकर रचना है।

भारत की विजय भौतिक विजय नहीं है, वह आत्मिक विजय है क्योंकि वह शस्त्र की विजय नहीं है, वह तो सत्य और अहिंसा की विजय है।

विभाजन के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक भावना का अनायास ही फिर उभर आना स्वाभाविक था, और वास्तव में ऐसा हुआ भी। परन्तु बापू के बलिदान ने उसे एकदम दबा दिया। उसका प्रभाव कुछ सामयिक रंग की हल्की-फुल्की कविताओं पर ही पड़ सका। गंभीर साहित्य तक आने से पहले ही वह दब गयी। इधर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत के वर्तमान महत्व ने इस तरह की भावना के लिए और भी अवकाश नहीं छोड़ा और भारत का राष्ट्रीय दृष्टिकोण अधिकृत रूप से उदार और व्यापक होता गया। विश्व संस्कृति के उसके स्वप्न विश्व के निकट संपर्क में आकर पन्त जैसे कवियों की वाणी में स्पष्ट और व्यक्त होने लगे। आज विसंवादी स्वर नहीं है यह कहना मिथ्या होगा। साम्प्रदायिक और वामपक्षीय स्वर सम-भंग करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस प्रकार की थोड़ी बहुत कविता और कहानियाँ आदि लिखी जा रही हैं, जिनमें यह शिकायत है कि आज भी हम स्वतन्त्र नहीं हैं, आज भी जनता आर्थिक और राजनीतिक बंधनों में जकड़ी हुई है इत्यादि। परन्तु यह स्वर अत्यन्त क्षीण है। हिन्दी काव्य के प्रतिनिधि स्वरों में इस प्रकार की निषेधात्मक आलोचना से मुक्त स्वास्थ्य और आशा का संदेश है।

दूसरी चिन्ताधारा है भौतिकवाद जो मूलतः मार्क्स दर्शन से प्रभावित है। हिन्दी की जन-जागरणवादी कविताएं तो स्पष्टतः इसी चिन्ताधारा से प्रेरित हैं। इनके अतिरिक्त छायावाद की अतीन्द्रिय सौंदर्य विवृत्तियों और रोमानी रूप उल्लास की प्रतिक्रिया में रची गयीं प्रयोगात्मक कविताओं का भी इसी चिन्ता-धारा से संबंध है। हिन्दी में पहली को प्रगतिवादी और दूसरी को प्रयोगवादी नाम दिया गया है। प्रगतिवादी कविता तो एकांत रूप से द्वंदात्मक भौतिकवाद ही की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, वह तो एक प्रकार से मार्क्स-दर्शन के साथ पूर्णतः आबद्ध है।

प्रयोगशील कविता में भी भौतिकवादी विचारधारा के कई तत्व वर्तमान हैं। उसका मार्ग घोषित रूप से विद्रोह का मार्ग है, उसमें परम्परा के प्रति अनास्था का प्रबल भाव है, और सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय के विरुद्ध भौतिक और मूर्त की महत्व स्थापना है। हाँ, उसका दृष्टिकोण सामाजिक न रहकर अधिकतर वैय-क्तिक हो जाता है। प्रयोगवादी कविता का मूल तत्व स्वभावतः ही काव्य-विषयक प्रयोग अथवा अन्वेषण है। "दावा केवल यही है कि यह सातों अन्वेषी हैं। काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बांधता है, बल्कि उनके तो

वे अपनी सार्थकता खो बैठते है, और प्रायः बाधक बन जाते हैं। काव्य के विषय में भी ठीक यही बात है। काव्य के मूल-तत्व रस-प्रतीति पर दृष्टि केंद्रित रखकर काव्य को गतिरोध और रूढ़िजाल से मुक्त करने के लिए नये प्रयोग स्तुत्य हैं। वे काव्य के साधक हैं परन्तु क्रम को उलट कर, काव्य की आत्मा का तिरस्कार करते हुए प्रयोगों को स्वतन्त्र महत्व देना, उन्हें ही साध्य मान लेना, हल्की साहसिकता मात्र है—काव्यगत मूल्यों का अनुचित तथा आवश्यक क्रम-विपर्यय है।

उपर्युक्त दो परस्पर विरोधी चिन्ताधाराओं से प्रभावित आधुनिक हिन्दी कविता की ये चार मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त एक प्रवृत्ति और है जो कदाचित् इनसे भी अधिक लोकप्रिय है और उसके अन्तर्गत आधुनिक युग की वे रचनाएँ आती हैं जो प्रत्यक्ष रूप से कवि के अपने सुख-दुख को लेकर लिखी गयी हैं। यह एकांत वैयक्तिक कविता है जो आत्माभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष माध्यम है। इसमें कवि अपने से बाहर या परे नहीं जाता, अपने वैयक्तिक संघर्ष और तज्जन्य हर्ष-विषाद को ही काव्य के स्वरों में बांधता है। इसमें न किसी धुंधले आध्यात्मिक आदर्श का मोह है और न किसी बाह्य सामाजिक कर्तव्य का आह्वान है। ये मन के गीत हैं और इसलिए इतने लोकप्रिय भी हैं। हमारे आधुनिक कवियों में से अधिकांश ने इस प्रकार की थोड़ी बहुत कविताएं अवश्य लिखी हैं और यह स्वाभाविक ही है क्योंकि नागरिक सभ्यता के इस युग में भी नाना वस्त्रादि से अलंकृत अपने शरीर को कभी-कभी अनावृत्त करने में भी जिस प्रकार हमें एक सहज सुख का अनुभव होता है, उसी प्रकार अनेक सामाजिक नैतिक आदर्शों और नीति-नियमों से आच्छादित अपनी अन्तश्चेतना को भी व्यक्त करने में एक विशेष आनन्द मिलता है। यह प्रवृत्ति उपर्युक्त दोनों चिन्ताधाराओं दक्षिण-पक्षीय आदर्शवाद और वामपक्षीय भौतिकवाद की मध्यवर्ती है। इसमें पहले की अन्तर्मुखी वृत्ति तथा वैयक्तिक चेतना है, और दूसरी का परम्परा के प्रति विद्रोह तथा भौतिक जीवन में आस्था। छायावाद की अमूर्त और अमांसल अनुभूतियों को मूर्त तथा मांसल रूप देते हुए इस कविता ने प्रगतिवाद की भौतिक मान्यताओं के लिए पथ प्रशस्त किया। इस प्रकार यह प्रवृत्ति छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा है।

संक्षेप में आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ ये ही हैं।

वे अपनी सार्थकता खो बैठते हैं, और प्रायः बाधक बन जाते हैं। काव्य के विषय में भी ठीक यही बात है। काव्य के मूल-तत्व रस-प्रतीति पर दृष्टि केंद्रित रखकर काव्य को गतिरोध और रूढ़िजाल से मुक्त करने के लिए नये प्रयोग स्तुत्य हैं। वे काव्य के साधक हैं परन्तु क्रम को उलट कर, काव्य की आत्मा का तिरस्कार करते हुए प्रयोगों को स्वतन्त्र महत्व देना, उन्हें ही साध्य मान लेना, इसकी साह-सिकता मात्र है—काव्यगत मूल्यों का अनुचित तथा आवश्यक क्रम-विपर्यय है।

उपर्युक्त दो परस्पर विरोधी चिन्ताधाराओं से प्रभावित आधुनिक हिन्दी कविता की ये चार मुख्य प्रवृत्तियां हैं। इनके अतिरिक्त एक प्रवृत्ति और है जो कदाचित् इनसे भी अधिक लोकप्रिय है और उसके अन्तर्गत आधुनिक युग की वे रचनाएँ आती हैं जो प्रत्यक्ष रूप से कवि के अपने सुख-दुख को लेकर लिखी गयी हैं। यह एकांत वैयक्तिक कविता है जो आत्माभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष माध्यम है। इसमें कवि अपने से बाहर या परे नहीं जाता, अपने वैयक्तिक संघर्ष और तज्जन्य हर्ष-विषाद को ही काव्य के स्वरों में बांधता है। इनमें न किसी धुंधले आध्या-त्मिक आदर्श का मोह है और न किसी बाह्य सामाजिक कर्तव्य का आह्वान है। ये मन के गीत हैं और इसलिए इतने लोकप्रिय भी हैं। हमारे आधुनिक कवियों में से अधिकांश ने इस प्रकार की थोड़ी बहुत कविताएं अवश्य लिखी हैं और यह स्वाभाविक ही है क्योंकि नागरिक सभ्यता के इस युग में भी नाना वस्त्रादि से अलंकृत अपने शरीर को कभी-कभी अनावृत्त करने में भी जिस प्रकार हमें एक सहज सुख का अनुभव होता है, उसी प्रकार अनेक सामाजिक नैतिक आदर्शों और नीति-नियमों से आच्छादित अपनी अन्तश्चेतना को भी व्यक्त करने में एक विशेष आनन्द मिलता है। यह प्रवृत्ति उपर्युक्त दोनों चिन्ताधाराओं दक्षिण-पक्षीय आदर्शवाद और वामपक्षीय भौतिकवाद की मध्यवर्ती है। इसमें पहले की अन्तर्मुखी वृत्ति तथा वैयक्तिक चेतना है, और दूसरी का परम्परा के प्रति विद्रोह तथा भौतिक जीवन में आस्था। छायावाद की अमूर्त और अमांसल अनुभूतियों को मूर्त तथा मांसल रूप देते हुए इस कविता ने प्रगतिवाद की भौतिक मान्यताओं के लिए पथ प्रशस्त किया। इस प्रकार यह प्रवृत्ति छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा है।

संक्षेप में आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ ये ही हैं।

# उदयशंकर भट्ट

नाटक साहित्य का वह अंग है जिसमें साहित्य का रस रूप धारण करके गतिशील होता है, और जीवन के प्रत्येक प्राण स्पंदन को साहित्य का रूप देकर उसमें एक नया आनन्द, नई स्फूर्ति देता है, अपने रूप विधान द्वारा शिक्षित, अशिक्षित बालक बढ़े को आत्मानुभूति में तन्मय बना देता है। नाटक ही वह साहित्य है जिसमें न केवल लेखक और उसके पात्रों की बल्कि (पाठक) दर्शक की भी आत्मा बोल उठती है। इसलिये इसे दृश्यकाव्य कहा गया है। अतएव इसका दृश्य होना ही इसकी सार्थकता है।

हिन्दी नाटक साहित्य कई सीढ़ियाँ पार करके आगे बढ़ा है। जहाँ उसे संस्कृत से प्रेरणा प्राण मिले हैं, वहाँ अन्य भाषाओं से भी उसे जी उठने का वरदान प्राप्त हुआ है। एक समय था जब हिन्दी में नाटक या तो संस्कृत की छाया लेकर लिखे जाते रहे या फिर उनका अनुवाद हुआ। भारतेंदु हरिश्चन्द्र से पूर्व नाटक का न तो रूप परिष्कृत हुआ था, और न उसका दृश्यत्व ही सफल हुआ। उस समय तक हिन्दी के नाटक का स्रोत संस्कृत ही था। कुछ अंग्रेजी का प्रभाव भी बंगला के द्वारा या प्रत्यक्ष रूप से माना जा सकता है। यहाँ तक कि जयशंकर प्रसाद के काल तक उनके नाटकों पर संस्कृत और अंग्रेजी का मिश्रित प्रभाव पड़ा।

नाटकों में रूप विभाजन तथा वस्तु विभाजन दोनों क्रियाओं का संविधान नई परिस्थितियों से हुआ है। प्राचीन नाटकों की परम्परा भी इसीलिये प्रसाद तक ही सीमित रही है। उन्होंने अपने नाटकों में नान्दी, सूत्रधार, विष्कम्भक आकाश-भाषित आदि को कहीं-कहीं स्थान दिया है। पर उनके अन्तिम नाटकों में यह प्रक्रिया लुप्त हो गई है। कदाचित इसीलिये जयशंकर प्रसाद प्राचीन और नवीन दोनों के बीच की कड़ी हैं। वस्तु के विभाजन एवं वस्तु संगठन की दृष्टि से भी वे प्राचीन के ही पक्षपाती रहे हैं। एक बात और, अंग्रेजी साहित्य के प्रचारित होने से पहले तक और बाद में भी हमारे साहित्य की दृष्टि भूत की ओर थी। साहित्य का ध्येय यही माना जाता रहा कि साहित्य का सृजन केवल भूत को

आधार मानकर ही हो सकता है। जैसे साहित्य का जीवन से कोई संबंध न हो। इस विचारधारा के कारण नाटक ही नहीं साहित्य के प्रायः सभी अंगों का सृजन इसी धारणा को लेकर हुआ। फलतः नई दृष्टि प्राप्त होते ही हिन्दी नाटकों ने पुराना चोला बड़ी कठोरता से उतार फेंका। नाटकों के नान्दी, सूत्रधार, विष्कंभक आदि सभी बदल गये। वस्तु में भी परिवर्तन होने लगे। इसका कारण मनुष्य का घोर रूप से यथार्थवादी होना है। यथार्थता की इस दृष्टि ने भूत के प्रति मोह को कम करके उसे जनवादी बनाया और कुछ नाटककारों ने इब्सन, मेटरलिंक, शा आदि के नाटकों से प्रेरणा प्राप्त करके उन्हें हमारे देश की समस्याओं का आधार बनाया। नर नारी के दायित्व, उनके परस्पर संबंध की चर्चा नवीण दृष्टि से हुई। अतीत का तिरस्कार होते हुए परम्परागत पुरुष स्त्री की रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का जन्म हुआ। इसके साथ ही नारी को नये रूप में, नई निष्ठा के साथ प्रतिष्ठित किया। यही नहीं, इसी यथार्थवादी दृष्टि ने सामाजिकता को भी प्रश्रय दिया। मोटे तौर पर संस्कृत के नाटकों से दूर होने पर, उनमें जो नवीनतायें आईं, वे इस प्रकार हैं :—

(१) संस्कृत नाटक जटिल नियमों से बंधे थे। हिन्दी का नाटक उनसे मुक्त हो गया।

(२) नाटकीय संकेत संस्कृत नाटकों में नहीं के बराबर थे। किन्तु हिंदी नाटकों में उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप से स्थान प्राप्त हुआ। आज का हिन्दी नाटक रंगपट पर मकान, कोठा, कमरा, सजावट, चित्र, तथा बैठने-उठने, हावभाव दिखाने आदि सभी का निर्देश करता है। वह पात्र की आयु, शरीर की बनावट, अवस्था तथा वस्त्र पहनने, बनाने तथा उसकी प्रकृति, उसके विचार सभी को ठीक-ठीक तरह विश्वास के साथ निर्दिष्ट करता है जैसे उसने उस व्यक्ति का कल्पित चित्र प्रत्यक्ष कर लिया हो। घटना के होने में काल का स्थान महत्वपूर्ण है। आज का नाटककार घड़ी मिनट तक का वर्णन करना नहीं भूलता।

(३) प्राचीन नाटकों में नान्दी, मंगलाचरण, प्रस्तावना, सूत्रधार, विष्कम्भक आदि होते थे, आज के नाटककार को यह सब वस्तुएं व्यर्थ लगती हैं। वह नेपथ्य का बहुत कम प्रयोग करता है। विष्कम्भक के बिना भी उसकी गति नहीं रुकती।

(४) आज के नाटकों में प्राचीन नाटकों की तरह संधि, नायक-नायिकाओं का विशेष प्रकार, उनके विशेष गुण धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित आदि

काल में नाटक का ध्येय मनोरंजन, राजाओं का विलास सौन्दर्य प्रदर्शन था। अथवा किसी अवसर विशेष के ऊपर खेले गये नाटकों का वह अवसर भी उसकी उपयोगिता थी। फिर भी तत्कालीन साधारण जीवन दर्शन के अतिरिक्त नाटक न तो किसी विशेष समस्या का समाधान करते थे, और न उन नाटकों में सर्व-साधारण की आत्मा ही बोलती थी। समय बदलता गया और नाटकों में भी परिवर्तन होते गये। संस्कृत का मृच्छकटिक नाटक भी उस काल के नाटकों की प्रथा मे एक क्रान्ति है। यद्यपि नाटक शृंखला एवं उसके रूपविधानों में वह भी पूर्णतः बंधा हुआ है। यह परम्परा निरवच्छिन्न रूप से नाटक साहित्य में प्रचलित रही। मेरा विश्वास है कविता की तरह नाटक साहित्य में जो बहुत परिवर्तन नहीं हुए, उसका कारण भारतीय रंगमंच का और स्पष्टतः हिन्दी रंगमच का अभाव था। अन्यथा हिन्दी में भी कई ऐसे क्रांति-कारी नाटक लिखे जा सकते थे।

हां, तो आज के नाटक में बाह्य और आभ्यन्तर सभी प्रकार के बदलाव हुए हैं। वस्तु, शैली, अभिव्यक्ति, संवाद तथा अन्तर्द्वन्द, इन सब में किन्तु इन सबका कारण जैसा कि मैंने अभी कहा समाज और उसकी परिस्थितियां है। परिस्थितियों ने चाहे उनमे बहुत सी राजनीतिक भी थी, नाटक साहित्य को जनोन्मुख होने को बाध्य कर दिया। तदनुसार वस्तु में भेद एवं उसकी दृष्टि में परिवर्तन हुआ। आज के नाटक की वस्तु एक तरह से जन व्यापी हो गयी है। कोई भी वस्तु, जिसमें सघर्ष, अभिव्यक्ति एवं अन्तर्द्वन्द की गुंजाइश है, नाटक की वस्तु हो सकती है। मजदूरों की हड़ताल के दृश्य से लेकर मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार के संघर्ष जिनमें जीवन को फूट कर विकसित होने का अवसर मिलता है आपके नाटक का विषय हो जाता है। धर्म, समाज, राजनीति, सुधार के सभी विषय जिन के द्वारा नाटककार मनुष्य के दम्भ पर चोट कर सके उसको ग्रहण कर लेता है। इस परिवर्तन का कारण है साहित्य का जीवनव्यापी एवं उपयोगितावादी होना। इसी उपयोगितावाद ने मनुष्य एवं लेखक की दृष्टि को यथार्थवादी बना लिया। आज दिन प्रतिदिन के जीवन संघर्ष ने अभावों के पर्याय ने मनुष्य के उर्वर कल्पना क्षेत्र को आकाश से नीचे लाकर पृथ्वी पर पटक दिया है। दैनन्दिन होने वाले युद्ध, अशान्ति, अभाव, पीड़ा की तरंगों ने उसमें ताजमहल, अजन्ता की गुफाओं के सौन्दर्य दर्शन द्वारा मनोरंजन ने उनकी अपनी क्षमता को हीन कर दिया। इसीलिए कल्पना, कविता, रोमांच के प्रति मानवबुद्धि में एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द उठ बैठा है और इसी हेतु नाटक के प्रत्येक व्यक्ति की समस्याओं और समाज समस्याओं ने जो सामाजिक रूप ग्रहण किया है उसका प्रतिबिम्ब आज के नाटक में भी बिम्बित होता है। कदाचित यही कारण

: ४ :

# उपन्यास

## रामचन्द्र तिवारी

हिन्दी उपन्यास का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। उसका जन्म प्रायः हिन्दी गद्य के साथ ही हुआ। यदि श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाये तो उसकी आयु लगभग सत्तर वर्ष ठहरती है। इसका अर्थ यह नहीं कि भारतीय कथा साहित्य की आयु केवल ७० वर्ष है। भारतीय कथा साहित्य की, संस्कृत, तमिल और पाली कथा साहित्य की प्राचीनता दशकों में नहीं, सहस्राब्दियों में आँकी जाती है। अर्थ इतना ही है कि हिन्दी भाषा के साहित्य का विकास भी लगभग एक हजार वर्ष पूर्व कथा साहित्य के आश्रय से ही आरम्भ हुआ। पर वह कथा साहित्य पद्यात्मक था। हिन्दी गद्य की नियमित रूप-रेखा लगभग सौ वर्ष पूर्व बननी आरम्भ हुई। गद्य में कथा कहने की रीतिविशेष उपन्यास ने आज से सत्तर वर्ष पूर्व जन्म पाया।

उपन्यास की परिभाषा करने का यदि प्रयत्न करें तो कहना होगा कि उसका मुख्य ध्येय पाठक का मनोरंजन है। यह काम वह कल्पित कथा को मार्मिक रीति से उपस्थित करके करता है। उपन्यास की कथायें सच्ची नहीं होतीं। पर वे बहुत आसानी से सच्ची हो सकती हैं। मनोरंजन के साथ-साथ उपन्यास और अनेक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है। उसके द्वारा रोमांचकारी वातावरण उपस्थित किया जा सकता है। विभिन्न रसों का संचार किया जा सकता है। व्यंग कसा जा सकता है। राजनीतिक और धार्मिक प्रेरणायें दी जा सकती हैं। आदर्श चित्र प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शिक्षा दी जा सकती है। और शिल्पिक सूचनायें भी वितरित की जा सकती हैं।

उपन्यास ने यूरोप के साहित्य में १८वीं शती में महत्त्व प्राप्त करना आरम्भ किया और १९वीं शती तक वह उसका अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग बन गया। इन्हीं दिनों यूरोप से भारत का संबंध घनिष्ठ हुआ। भारतीय अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क में आये। उन्होंने अंग्रेजी के उपन्यासों का अध्ययन किया और अंग्रेजी के माध्यम से अन्य यूरोपीय भाषाओं के उपन्यासों का भी परिचय पाया। हिन्दीभाषियों के लिए यह

एक नवीन और मोहक अनुभव था। हिन्दी साहित्यकारों के मन में स्वभावतः भावना जागी कि जैसे सुन्दर उपन्यास अंग्रेजी भाषा में हैं, उसके अपने हैं अथवा अन्य भाषाओं से उसमें अनूदित हैं, वैसे हिन्दी में भी होने चाहिये।

बंगलाभाषी हिन्दीभाषियों से पहले अंग्रेजी के सम्पर्क में आ चुके थे। बंगला साहित्य में रचना का नवयुग आरम्भ हो गया था और उपन्यास काफी मात्रा में लिखे जा रहे थे। बंगला देशी भाषा होने के कारण हिन्दीभाषियों को अधिक सुलभ थी। इसलिए यूरोप का यह प्रभाव सीधे अंग्रेजी के मार्ग से ही नहीं, बंगला तथा अन्य भाषाओं द्वारा भी कुछ चक्कर काट कर हिन्दी तक पहुँचा जिसका परिणाम यह हुआ कि आरम्भ में जहाँ एक ओर श्रीनिवासदास, राधाकृष्णदास आदि ने मौलिक उपन्यास रचना की नींव रखी वहाँ दूसरी ओर बंगला, उर्दू, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी से अनेकों उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में किया गया। कुछ वर्षों बाद हिन्दी में अपने मौलिक उपन्यास भी बड़ी संख्या में निकलने लगे। अयोध्या सिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता, ब्रजनंदन सहाय प्रभृति बहुत से साहित्यिकों ने इस क्षेत्र में अपना योग दिया। पर जिन लेखकों ने अपना लगभग सम्पूर्ण समय साहित्य के इसी रूप को दिया वे हैं: देवकी नन्दन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी। देवकीनन्दन खत्री ने तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास लिखे तथा गोस्वामी जी ने नरनारी के राग के आधार पर छोटे-बड़े पैंसठ सामाजिक उपन्यास प्रस्तुत किये। गोस्वामी जी के उपन्यासों का महत्व आज इतिहास से अधिक विशेष नहीं है, पर खत्री जी ने ऐयारियों और तिलस्मों की जो अद्भुत इमारत खड़ी की है उससे आज भी लाखों चकित और मोहित पाठक अपना मनोरंजन करते हैं।

उपन्यास काव्य का नवीन और अति स्वीकृत रूप है। वह साहित्य का अंग है। साहित्य युग का अनुगामी है। युग-जीवन उसमें प्रतिबिम्बित होता है। युग की आशायें, युग की अभिलाषायें, युग के संघर्ष और युग के आदर्श, युग की यथार्थता के अवयवों की भाँति साहित्य को शरीर देते हैं, उसके प्राणों में स्पन्दन भरते हैं और उसकी वाणी बनते हैं। वे साहित्य को आकृति देने की क्रिया में स्वयं मूर्तिमान हो जाते हैं। हिन्दी उपन्यास का आरम्भिक काल देश में सर्वाङ्गीण सुधार का युग था। एक जाग्रत और उभरती जाति के संसर्ग से भारतीय समाज में खलबली मच गई थी। वह बाहरी संसार में व्याप्त विचारधाराओं के साथ अपना संतुलन स्थापित करना चाहता था। युग के अनुसार बदलने की प्रेरणा उसमें बलवती हो रही थी। व्यक्ति में, समाज में, धर्म में एक पुनर्निर्माण की लहर दौड़ने लगी थी। आरम्भिक काल के उपन्यासों में यह सुधारक प्रवृति स्पष्ट दिखाई देती है।

इतिहास आगे बढ़ा। देश में राजनीतिक परिवर्तन आये। शिक्षा का विस्तार हुआ। जो शक्तियाँ समाज सुधार में लगीं थीं, उन्हें अनुभव होने लगा कि जब तक राजनीतिक सत्ता हाथ में नहीं आयेगी, किसी प्रकार का गम्भीर समाज सुधार सम्भव नहीं है। एक नई भूख जागी और स्वतंत्रता के लिए देश की आत्मा तड़प उठी। इस विशाल देश में ध्येय की एकता जन्मी और विभिन्न सूत्रों के एकत्रीकरण से एक नये स्वाधीनता संग्राम का शिलान्यास हुआ। चिट्ठी-पत्री, प्रस्तावों और अग्रलेखों के सहारे यह जागरण का संघर्ष आगे बढ़ा।

इसके साथ-साथ विज्ञान ने उन्नति की। जीवन में सुविधा बढ़ी। रोगों की रोकथाम और चिकित्सा की सफलता व्यापकतर हो चली। दुर्भिक्षों में कमी आई। कुल मिला कर फल यह हुआ कि देश की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी। जनसंख्या के आधिक्य से देश के साधनों का विभाजन बढ़ा। दरिद्रता धीरे-धीरे फैली और फिर उभर कर प्रत्यक्ष ही सामने आ गई। जो प्रश्न समाज सुधार और देशोन्नति शीर्षकों के नीचे भावात्मक सा दीखता था वह अब घोर यथार्थ हो गया। प्रखर आर्थिक बन गया। उसका संबंध उन्नति से पहले जीवन-मरण से जुड़ गया।

राजनीतिक संघर्ष की तीव्रता के बीच महात्मा गांधी का आविर्भाव हुआ। उन्होंने संघर्ष का नेतृत्व संभाला। संबद्ध समस्याओं को उनके मौलिक रूप में परखा और सत्य, अहिंसा तथा आत्मबलिदान पर स्थित होकर सत्याग्रह के शस्त्र को अपनाया। देश ने विदेशी शासकों से सबसे पहला खुला देशव्यापी मोर्चा लिया। देश में अलौकिक चमत्कार हो गया। उसके प्राण उद्वेलित हो उठे। मानव स्फूर्ति से भर कर अतिमानव बन गये। ऐसे काल में हिन्दी में प्रेमचन्द का उदय हुआ। प्रेमचन्द ही हिन्दी के वह सर्वप्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने युग के बिम्ब को पूर्णतया ग्रहण किया है और उससे स्फूर्त हो उठे हैं। वे गांधी के आदर्शों में जैसे अपने को भूल गये हैं, इसलिए कुछ आलोचक कहना पसंद करते है कि वे गांधीवादी उपन्यासकार हैं। प्रेमचन्द उत्साहमय हैं, विश्वासमय हैं, लगता है कि कला उनकी कथाभाग में स्वतः खिंची चली आ रही है।

विश्लेषक शास्त्र से प्रश्न करें तो ज्ञात होता है कि उपन्यास के निर्माण में कथा-वस्तु, पात्र, चरित्रचित्रण, कथोपकथन, देश काल और शैली नामक तत्व भाग लेते हैं। ऐसा विश्लेषण आलोचना के लिए कदाचित सहायक सिद्ध हो सके। पर लेखक की ओर से यदि उपन्यास निर्माण को समझना है तो एक अधिक समन्वयात्मक विश्लेषण की आवश्यकता होती है। मोटे तौर पर इस दृष्टिकोण से चार तत्व सामने आते हैं। पहला और सबसे महत्वपूर्ण तत्व है : राग, जो मानव-मानव के बीच

चिरंतन सत्य है और रस का आधार है मनुष्य-मनुष्य के बीच का आकर्षण और विकर्षण, उनके बीच का प्रेम और स्नेह, ईर्षा और द्वेष वह चट्टान हैं, जिस पर उपन्यास की नींव रखी जाती है। और कुछ हो या न हो इसका होना अनिवार्य है। इसके अभाव में उपन्यास आरम्भ ही नहीं होता।

दूसरा तत्व है सामयिकता। उपन्यास की कथा का प्रायः एक ही युग होता है। विशेष उपन्यास कई कालों में फैला हुआ हो सकता है। राग के आधार पर पात्रों के व्यवहार को दिशा तो मिल जाती है, पर उन्हें उस व्यवहार की बारीकियाँ प्राप्त नहीं होती। यह बारीकियाँ उपन्यास को उस समाज से प्राप्त होती हैं, जिसमें लेखक रहता है। लेखक अपने समय में जो देखता सुनता है, वही उसके पात्रों के व्यवहार को शासित करता है। ऐतिहासिक कहे जाने वाले उपन्यासों में भी कथा के वास्तविक युग का चित्रण करना असम्भव होता है। चित्रण का आधार वही ज्ञान और विश्वास होता है, जो लेखक के समय में प्रस्तुत कथा के विषय में पाया जाता है। राग उपन्यास का प्राण है और सामयिकता उपन्यास को शरीर देकर मांसल बनाती है।

तीसरा तत्व है लेखक का दर्शन। उपन्यास समाज का प्रतिबिम्ब और प्रतिक्रिया है,वह कर्ममय है। उसमें जो होता है वह बड़े जोर-शोर से होता है। संसार की अन्य बातों को भूल कर होता है। पात्र और उनका व्यवहार लेखक की आज्ञा के अनुगामी हैं वह उनसे जो चाहे करा सकता है। वह क्या कराता है यह उसके जीवन दर्शन पर निर्भर करता है। लेखक पात्रों से जो कराता है, उपन्यास वही हो जाता है। लेखक अपने दर्शन से उपन्यास को दिशा देता है। उसे गतिवान बनाता है। पूरी कृति सिरज कर वह अपने मन्तव्य को साकार करता है। विचारवादी पाठकों के लिए कभी यह तत्व बहुत ही महत्वपूर्ण हो उठता है।

चौथा तत्व है कला। कला वह कौशल है जो उपन्यास लेखक उपर्लिखित तीनों तत्वों को अपनी कलाकृति में समन्वित करने के लिए काम में लाता है। कला का महत्व इसीलिए है कि उपन्यास की सफलता इन तत्वों के कुशल समन्वय से ही प्रस्फुटित होती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में पहले तीनों तत्व शक्तिमान हैं; तथा समुचित संतुलन के साथ समन्वित हुए हैं, इसी से उनको इतनी सफलता है। देवकी नन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी और किशोरी दास गोस्वामी ने हिन्दी उपन्यास की जड़ अपनी आश्चर्यमयी, अद्भुत, विचित्र, भयानक, जेवनरी और शृंगारमयी रचनाओं से जमाई तो प्रेमचन्द्र ने अपनी स्वस्थ, स्पन्दनशील, शक्तिवान, आदर्शमयी, व सामाजिक-राजनीतिक रचनाओं से इस उपन्यास वृक्ष को एक सुदृढ़ता प्रदान की।

और उसे इस स्थिति में छोड़ा कि वह अनेक हल्की भारी शाखाओं प्रशाखाओं का भार सरलता से वहन कर सके।

नवीन प्रवृत्तियों और धाराओं के अध्ययन को नियमित करने के लिए हम उत्तर प्रेमचन्द्र काल को अवशेप ब्रिटिश-काल और भारतीय काल में विभाजित कर सकते हैं। १९४७ तक अवशेप ब्रिटिश काल और उसके पश्चात् भारतीय काल। अवशेप ब्रिटिश काल में हिन्दी उपन्यास की मुख्य धारा राजनीतिक संघर्ष के आस-पास ही घूमती रही। विदेशी सत्ता से राजनीतिक शक्ति हस्तगत करने के लिए देश में दो प्रयत्न हो रहे थे। गांधी के नेतृत्व में अहिंसक प्रयत्न और आतंककारी दलों के द्वारा सशस्त्र प्रयत्न। आतंकवादी व्यक्तियों के जीवन अलौकिक त्याग, बलिदान और जीवन की भावना से परिपूर्ण थे। कुछ कथाकारों ने आतंकवादी चरित्रों के चित्रण का प्रयत्न किया है। पर कहा जा सकता है कि हिन्दी में यह क्षेत्र अभी तक अछूता ही है।

राजनीतिक संघर्ष से शक्ति धीरे-धीरे भारत की ओर सरकने लगी। तो सिद्धांत के विद्वानों के मस्तिष्क में प्रश्न उठा कि वह राजनीतिक शक्ति किसके पास आयेगी? कौन देश का शासक होगा? शासन तंत्र का रूप क्या होगा और उस राजनीतिक शक्ति का उपयोग समाज के किस वर्ग के हित में किया जायेगा? यह प्रश्न भारत के ही नहीं मानव जाति के प्रश्न थे। वे मार्क्स द्वारा उठाये गये थे। उसके परवर्ती इतिहास ने उनकी नाना व्याख्यायें की थीं और अब वे स्वभावतः भारतीय राजनीति के क्षेत्र में भी आ गये। मार्क्स के साम्यवादी विचारों का हिन्दी उपन्यास पर प्रभाव पड़ा। मार्क्स के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिये उपन्यास लिखे गये। 'दादा कामरेड' और 'देशद्रोही' इस श्रेणी के उपन्यास हैं। यही नहीं अवशेप ब्रिटिश काल तथा भारतीय काल में प्रकाशित उपन्यासों से यह ज्ञात होता है कि हिन्दी उपन्यास लेखकों का बहुत बड़ा वर्ग मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित है और प्रत्यक्ष अथवा प्रछन्न रूप से उसका प्रतिपादन करता है। मार्क्स के विचारों की दिशा अब प्रगतिशील मानव के विचारों की दिशा बन गई है। यह वर्ग मानता है कि संसार की जनसंख्या बढ़ रही है, और संसार में जीवन यापन के साधनों की एक सीमा है। मनुष्य जाति का हित इसी में है कि वह बुद्धिमानी के साथ वैज्ञानिक रीति से संसार के साधनों का उपयोग करे और जन-जन के बीच जीवन सुविधाओं का समुचित वितरण हो। इस वर्ग के उपन्यासों को आलोचक प्रगतिवादी कहना पसन्द करते हैं। विचारों की दिशा के आधार पर अभी तक प्रेमचन्द हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी उपन्यासकार हैं।

भारतीय स्वतंत्रता के संग्राम के प्रमुख भाग में शस्त्रों का उपयोग भले ही न

किया गया हो, पर संग्राम पूर्ण रूप से था। साहस को आयुध बना कर शांत दृढ़ सैनिकों ने कारागार की यातनायें झेलीं, अपनी पैत्रिक जमीन जायदादें गँवाई, अपमान सहे, लाठियाँ खाईं और निर्भीकतापूर्वक अपनी भावुक छातियों को नृशंस गोलियों के लिये खोल दिया। नर, नारी, वृद्ध,युवा, बालक-बालिका, सभी ने इस युद्ध में अपनी आहुति दी। हथेली पर सिर रख कर मैदान में बढ़ जाने की यह शक्ति उन्हें कहाँ से मिली? गांधी के वाक्यों से। उन वाक्यों से जिनके पीछे महाप्राण भारतीय इतिहास का गौरवमय स्पन्दन था। जाति जागी उसने अपने गौरव को पुनर्जीवित देखना चाहा। नाटककारों ने अपने नाटकों से, कवियों ने अपने गीतों से जाति की यह भूख पूरी करने का प्रयत्न किया। उपन्यास लेखकों ने भी इस क्षेत्र में पदार्पण किया। राजपूताने की गाथाओं, बुंदेलों की वीरता और भारतीय इतिहास के स्वर्णकाल की कथाओं को लेकर ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गये। इन उपन्यासों में भारतीय वीरों की गाथायें हैं, अधिकांश में आधुनिक प्रकार की देश भक्ति और काव्यात्मक प्रेम-कहानी का समिश्रण है। सब मिला कर एक अपूर्व भारतीय गौरव का चित्रण है। इन उपन्यासों का वातावरण कहाँ तक ऐतिहासिक है यह प्रश्न अत्यंत विवादास्पद है। कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों का निर्माण एक विचित्र रीति से हुआ है। बाहर से उठाये हुए पात्रों को भारतीय इतिहास के काल विशेष में रख दिया गया है। उनके चारों ओर घटनायें गुम्फित कर दी गई हैं और उनके द्वारा उपन्यासकार ने अपना इष्ट विषय प्रतिपादित कराया है। ऐतिहासिक उपन्यास साधारण अन्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक रोचक उपन्यास हैं। कारण यह है कि उनके लिए कथा प्रायः मंजी मंजाई तैयार मिल जाती है। स्वाभाविकता लाने के लिए कल्पना को परिश्रम नहीं करना पड़ता। उनमें कथा का प्रवाह तेज पाया जाता है। ऐतिहासिक उपन्यास धारा के संबंध में गढ़ कुंडार, झाँसी की रानी, दिव्या और चित्रलेखा का नाम लिया जा सकता है।

गांधी ने भारतीय जीवन को भारत के गाँव में पाया। भारतीय ग्रामीण भारतीय जीवन का केन्द्र है। मार्क्स ने यूरोप के राजनीति के केन्द्र नगरों का अध्ययन किया और वहाँ विशालकाय औद्योगिक मशीन से त्रस्त असहाय मजदूर को देखा। यह मजदूर मार्क्स के चिन्तन का केन्द्र बन गया। गांधी का किसान और कारखाने में काम करने वाला मार्क्स का मजदूर। प्रेमचन्द ने नगर में मजदूरों के चरित्रों का निर्माण किया है, पर वे भारतीय शक्ति के केन्द्र गाँव से जुड़े हुए हैं। प्रेमचन्द गाँव में बहुत भीतर तक नहीं गये हैं पर उनके चरण सदा गाँव में रहे हैं। भारतीय संस्कृति की दृढ़ता और नमनीयता का बोध भारत के नगरों में नहीं गाँवों में ही

मिलता है। भारतीय ग्राम बहुत कम उपन्यासों के विषय बने हैं। प्रगतिवादी उपन्यासकार तो लगभग पूर्णतया अपना क्षेत्र नगर में ही उठा लाये हैं। जो हमारा तीन चौथाई से अधिक है उसकी ओर हिन्दी उपन्यास का ध्यान कम हो गया है। फिर भी कुछ उपन्यास हैं जो इस दिशा में गंभीर प्रयत्न कहे जा सकते हैं। ऐसे उपन्यासों में बिल्लेसुर बकरिहा और उत्तर प्रेमचन्द काल में नारी, कमला, गोद, नवजीवन आदि का नाम लिया जा सकता है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। अनुसंधान का युग है। यह अनुसंधान भौतिक पदार्थों तक ही सीमित नहीं है। मानव मन को भी उसका क्षेत्र बनना पड़ा है। फ्रायड ने मानव के मन का अध्ययन किया। उसने उसके दो भाग निर्धारित किये। चेतन और अवचेतन। पर सब से महत्वपूर्ण तथ्य जो उसने स्थापित किया, वह यह था कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मनुष्य के पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण का आधार उनका लैंगिक राग है। मनुष्य के अस्तित्व का केन्द्र लैंगिक है। नर नारी की सहज आकर्षण वृत्ति पर मनुष्य ठहरा हुआ है। मानव संसार की समस्त घटनायें इसी तथ्य में जन्म पाती हैं। फ्रायड के अनुसंधानों के इस परिणाम ने समझदारों के हाथ में जैसे मानव चरित्र की कुंजी पकड़ा दी। नर नारी के आकर्षण का सविस्तार वर्णन होने लगा। और उस साहित्य की सृष्टि प्रखर रूप से हो चली जिसे अश्लील कहा जाता है। द्वितीय महासमर की सैनिक आवश्यकताओं ने इस प्रवृत्ति को और भी प्रोत्साहित किया। पर्याप्त समय तक यह उच्छृंखल फ्रायडी प्रवृति प्रगतिशीलता का अंग बनी रही। इस प्रवृति का प्रभाव सभी उपन्यासों पर थोड़ा बहुत पड़ा। इस प्रभाव की गहराई और उसका प्रकार आंकने के लिए त्यागपत्र, शेखर, गिरती दीवारें और सन्यासी को परखा जा सकता है। त्यागपत्र में फ्रायडी तत्व और कला का ऐसा संतुलित संयोग है कि वह एक सुन्दर रसमय कलाकृति बन गई है। शेखर का प्रथम भाग फ्रायडी तत्व और सिद्धान्त विवेचन से बोझिल है। शेखर के द्वितीय भाग और गिरती दीवारें में कथातत्व ने बल प्राप्त कर लिया है और संतुलन अधिक स्पष्ट है। इसलिए उनमें रस भी अधिक है। पर सन्यासी इनसे कुछ भिन्न तल पर है। उनमें कथा जैसे एक मनोवैज्ञानिक चित्रावली प्रस्तुत करने का माध्यम है।

उत्तर प्रेमचन्द काल में अनेकों महत्वपूर्ण घटनायें हुई हैं। देश में द्वितीय युद्ध का आतंक रहा है। सन् ४२ का राष्ट्रीय विद्रोह हुआ। बंगाल में भीषण अकाल पड़ा और नेताजी के नेतृत्व में भारत की स्वतंत्रता के लिये लड़ने वाली प्रथम राष्ट्रीय सेना का निर्माण हुआ। इनके अतिरिक्त स्थानीय महत्व की अनेकों घटनायें हुईं जो

जनजीवन की द्योतक थी और सहज ही उपन्यासों का आधार बन सकती थी। इस धारा में बंगाल की वेदना के आसपास निर्मित सागर, सरिता और अकाल कथनीय है।

उपन्यास वर्तमान साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। परम पार्थिव से लेकर अतिसूक्ष्म दर्शन तक उसका सहारा लेता है। उपन्यास की अनेक धारायें हैं जो हिन्दी में अछूती पड़ी हैं। पिछले वर्षों में कोई महत्वपूर्ण ऐयारी उपन्यास नहीं सामने आया। महत्वपूर्ण जासूसी उपन्यास नहीं लिखे गये। हमारा देश सुन्दर पर्वतों से भरा है। पर एक उपन्यास उन पर नहीं मिलता। बच्चों के लिए उपन्यास नहीं हैं। जीवन का कोई उपन्यास नहीं है। वर्तमान युग विज्ञान का युग है, पर उस विज्ञान पर भी कोई उपन्यास नहीं है। युद्ध में लाखों शिक्षित भारतीय विदेश गये थे पर विदेशी वातावरण के और युद्ध सम्बन्धी महत्वपूर्ण उपन्यास अभी लिखे जाने हैं।

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् भी हिन्दी उपन्यास क्षेत्र की दशा वही है जो अभी मैं कह चुका हूँ। उस काल में भीषण उथल-पुथल हुई है। देश के नागरिक पर एक नवीन उत्तरदायित्व शताब्दियों के पश्चात् आया है। उच्चतम मानव आदर्शों के आधार पर देश का विधान निर्मित हुआ है। देश ने अनेकों दिशाओं में उन्नति की ओर पग बढ़ाये हैं पर इन घटनाओं के प्रति हिन्दी का उपन्यास सुन्न है। उस क्षेत्र की प्रतिभा जैसे इस महान् परिवर्तनों को पूर्णतया समझ नहीं पायी है। वह जैसे मोहित है। उसकी धार कुंठित हो गई है।

जो कुछ इधर सामने आया है, उसमें नदी के द्वीप, सुखदा, और वलचनमा अपनी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। पथ की खोज एक उत्सुक प्रयत्न है। लगता है कि अन्तरिक्ष में उथल-पुथल हो रही है। और एक नवीन साहित्यिक महायज्ञ के लिए मंच सजाया जा रहा है, नवीन राग, नवीन भावनायें और नवीन आदर्श उदय हो रहे हैं। साहित्य में वे शीघ्र प्रस्फुटित होंगे। विश्वास है कि हिन्दी उपन्यास उनसे उचित मात्रा में स्फूर्ति और गति ग्रहण करेगा।

# देश विदेश की लोककथाएं

इस संग्रह में देश विदेश की चुनी हुई सोलह लोककथाओं को स्थान दिया गया है। पुस्तक में ५० से ऊपर चित्र और ७४ पृष्ठ हैं और इसका आवरण पृष्ठ बहुत ही आकर्षक तथा तिरंगा है। इतना सब होते हुए भी पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया रखा गया है।

देश विदेश की प्रसिद्ध लोककथाओं का यह संग्रह इस उद्देश्य से निकाला गया है कि हमारे देश के बच्चे लोककथाओं के द्वारा अन्य देशों के लोक-जीवन से परिचित हों और उनमें अन्तर्राष्ट्रीय भावना बढ़े। इस संग्रह में तुर्किस्तान, अफ्रीका, तिब्बत, कोरिया, जापान, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, यूनान, रूस, प्राचीन अमेरिका, इटली, नार्वे, इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि देशों की लोककथाएं हैं। ये कहानियाँ अत्यन्त सरल और रोचक भाषा में लिखी गई हैं। जिन बच्चों या प्रौढ़ों का हिन्दी सम्बन्धी ज्ञान तीसरी-चौथी कक्षा तक है, वे इस पुस्तक को अच्छी तरह समझ सकते हैं। यह पुस्तक बाल-साहित्य और प्रौढ़-शिक्षा दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी होगी।

इस माला के अगले दो संग्रह भारत की लोककथाएं तथा मनोरंजक कहानियाँ जल्दी ही प्रकाशित होने वाले हैं।